क्षमा. २

ॐ

भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भगवद्भक्ति विमुखानां गात्र गर्तेषु भूयताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात् तेषां जन्म शतैरपि ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

कार्त्तिक सम्वत् १९८३ ॥

विषय सूचि ।

विषय	पृष्ठ
१. मंगला चरण	१
२. भक्ति (कविता)	४
(ले० श्री लक्ष्मी नारायण शर्मा कृपाण)	
३. नास्तिक चुप रहो	५
४. तर्पण	६
(ले० श्री सत्यप्रिय)	
५. धर्म उपदेश	९
(ले० श्री रूपराम जी)	
६. नाथ कब आओगे	११
(ले० श्री लक्ष्मी नारायण शर्मा कृपाण)	
७. शाश्वत जीवन	१२
ले० श्री रामचन्द्र जैन एम० ए०)	
८. मृत्यु ।	१६
९. भक्ति कैसे उपजती है ।	१७
(ले० बा० नेतराम रवाड़ी)	
१०. ईश्वर का साक्षात्कार ।	१८
(ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी)	
११. भजन	२२
(ले० श्री गुलाब चन्द्र 'आनंद')	
१२. कहाँ	२२
(ले० श्रीयुत विक्रम)	
१३. उपासना के भेद उनकी विधि	२३
१४. भारतीय बालिका की विचित्र शक्ति	२५
१५. संसार समाचार	२६
१६. त्रिपुर वध	२८
१७. आजसे एक हजार वर्ष बाद	३१

भगवद्भक्ति आश्रम का होवे सबजग में परचार ॥ टेक ॥
देश नरेश महेशकी भक्ति, करो दूर जिससे हो कुमति । ईश्वर दे सबको मिल सुमति
जिससे हो उद्धार, मिट जाय सब दुःखभ्रम का ॥ १ ॥
ग्रामों में आश्रम बनवाओ, विद्यालय वहां पर खुलवाओ । लड़का लड़की साथ पढ़ाओ,
परदा देवो डार सब, करदो नाश भरम का ॥ २ ॥
गऊ बैलों की नसल बढ़ाओ इनको कटनेसे बचवाओ । जो तुम भारत को सुख चाहो,
करो विद्या परचार, है यह काम धरम का ॥ ३ ॥
गोबर का तुम खाद बनाओ, हार खेतों में रतन कमाओ । चूल्हे में नित लकड़ी जलाओ,
होय सुखी नर नार, है युग काम यापन का ॥ ४ ॥
हवादार तुम महल बनाओ, खिड़की झरोखे खूब लगाओ पशुओंसे तुम मनुष्य बनाओ
जैन रहा ललकार, अब है यह समय करम का ॥ ५ ॥

ॐ

"फलरूपा तु केवला भक्तिः" ।

मूल्य २)

भक्ति

एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली मासिक पत्रिका ।

वर्ष १.] भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा, कार्त्तिक शुक्ल पक्ष पूर्णिमा सं० १९८३ [अङ्क २

॥ मंगलाचरणम् ॥

गायन्ति साम कुशला यमजं मखेषु ध्यायन्ति धीरमतयो यतयो विविक्ते ।
पश्यन्ति योगि पुरुषाः पुरुषं शरीरे वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

जिस परमेश्वर को सामगान में कुशल यज्ञों में गान करते हैं, धीर मति एकान्त में जिन का ध्यान करते हैं और योगी पुरुष जिस पर पुरुष को अपने शरीर में देखते हैं हे महापुरुष! ऐसे आप के चरणारविंदों को प्रणाम करता हूं ॥

न च स्तोतुं शक्ता त्रिगुण विषया वाङ्न च मनः
समाधातुं याति श्रुतिरपि न तद्वृत्ति मनिषम् ।
मुनीन्द्राणां यस्मिन्सदसदिति वाचो विवसिता
नमस्तस्मै कस्मै चिदपि जगदीशाय सततम् ॥

तीनों गुणों का विषय होने से वाणी और मन आप की स्तुति करने में असमर्थ हैं । मन की वृत्ति और श्रुति भी दिन रात जिस का समाधान करने में असमर्थ है जिस में मुनींद्रों

की सत् और असत् वाणी भी विवक्षित है ऐसे ज्ञान और सुख स्वरूप जगदीश के लिये निरन्तर नमस्कार है ॥

नचैश्वर्यं प्राज्यं न च बहुविधं राज्य मतुलं
न याचेऽहं वामां सकल जनकामां श्रिय मपि ।
परब्रह्मन्नेकां वितर सविवेकां स्वविषयां
परां भक्तिं मह्यं स्वजनरत तुभ्यं नम इति ॥

हे प्रभो ! न तो बहुत बड़ा ऐश्वर्य और नहीं बहुत बड़ा राज्य मांगता हूं। न मैं स्त्री मांगता और नहीं सकल जनों की कामना को पूर्ण करने वाली श्री की ही याचना करता हूं। हे परब्रह्म ! अपने विषयों में विवेक युक्त अपनी परा भक्ति को मेरे लिये वितरण कीजिये । अपने जनों में रत आप को नमस्कार हो ।

जगज्ज्येष्ठं श्रेष्ठं सुरपति कनिष्ठं कृतपतिं
बलिष्ठं भूयिष्ठं त्रिभुवन वरिष्ठं वर वरम् ।
स्वनिष्ठं धर्मिष्ठं गुरु गुण गरिष्ठं गुरु गुरुम्
नमामो विश्वेशं परम सुखकन्दं पुरिशयम् ॥

जगत् में सब से बड़े, श्रेष्ठ, सुर पतियों में कनिष्ठ, यज्ञके पति, बलवान् सर्व व्यापक, तीनों भुवनों में श्रेष्ठ, वरों के वर, अपनी मया में स्थित, धर्म में रत, बहुत सुख देने वाले, हृदय में शयन करने वाले विश्वेश को नमस्कार हो ।

अयंदान कालस्त्वहं दान पात्रं भवान्नाथ दाता त्वदन्यं न याचे
भवद्भक्ति मेव स्थिरां देही मह्यं कृपा शील शम्भो कृतार्थी भवेयम्

यह दानका काल है और मैं दान का पात्र हूं। हे नाथ! आपके सिवा और किसीसे प्रार्थना नहीं करता। हे कृपाशील शम्भो! आप अपनी स्थिर भक्ति मुझे प्रदान करें जिससे मैं कृतार्थ होऊं

त्वत्पादपद्मार्पित चित्त वृत्ति स्त्वन्नाम संगीत कथासु वाणी
त्वद्भक्त सेवां नियतौ करौ मे त्वदङ्ग संङ्गं लभतां मदङ्गम्॥

हे प्रभो मेरी चित्त वृत्ति आप के चरण कमलों में अर्पित हो। मेरी वाणी आप के कीर्तन तथा कथा में रक्त हो। मेरे हाथ आप के भक्तों की सेवा करते रहें मेरा अङ्ग आप के अंग का स्पर्श करे।

श्रीराम नारायण वासुदेव गोविन्द वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण
श्री केशवानन्त नृसिंह विष्णो मां त्राहि संसार भुजंग दष्टम् ॥

हे राम! हे नारायण! हे वासुदेव! हे गोविन्द! हे नृसिंह! हे मुकुन्द! हे कृष्ण! हे केशवानन्त! हे नृसिंह! हे विष्णो! मुझ संसार रूपी सर्प से काटे हुए की रक्षा करो।

दीनबन्धो दयासिन्धो सुहृद् बन्धो जगत्पते।
संसारसिन्धु मग्नं मां आपत्सख समुद्धर ॥

हे करुणा सिन्धो! यावत जीवन पर्यन्त मैं आप से अदीनता और देह की दृढ़ता तथा आप के चरण कमलों में सदा प्रीति की याचना करता हूं।

याचेऽहं करुणासिन्धो यावज्जीव मिदं तव।
अदैन्यं देह दार्ढ्यञ्च त्वत्पादाम्बुज सदा रतिम ॥

हे देवश! दोषों के सहन करने में कहीं भी आप के समान कोई नहीं है और मेरे समान कृतघ्न तथा वञ्चक संसार में नहीं है।

देषानाञ्च सहिष्णुत्वे कुत्रापि त्वत्समो नहि ।
मत्समो नहि देवेश कृतघ्नो वञ्चको भुवि ॥

हे अच्युत ! आप ईश हैं, पूर्ण काम हैं आप को क्या असाध्य है । हे दीनों पर दया करने वाले ! मेरा इष्ट तो बहुत ही स्वल्प है ।

ईशस्य पूर्ण कामस्य किमसाध्यं तवाऽच्युत ॥
ममेष्टञ्च कियन्मात्रं तव दीन दयानिधे ॥

हे दीन बन्धो ! हे दया सिन्धो ! हे सुहृद बन्धो ! हे जगत् पते ! मुझ संसार रूपी समुद्रमें निमग्न हुए की हे आपत्सख ! रक्षा करो ।

भक्ति ।

(डै० श्री० लक्ष्मी नारायण शर्मा 'कृपाख, चिड़ावा')

हरि भक्ति ही दुनियाँ में सार है ॥
आयु खोते हो माया के फँस जाल में, नहीं मन को लगाते हो नंद लाल में ॥
कैसे होगा तुम्हारा उद्धार है ॥
पाके नर तन सुफल कर कमाई चलो, होगा तुम्हारा भला कर भलाई चलो ॥
रक्खो सिर पै न पापों का भार है ॥
जो भी कुछ है यहां ही रह जायगा, काम कोई नहीं अन्त में आयगा ॥
समझो भक्ति ही हार शृंगार है ॥
पिता माता ससुर सासु भाई बहन, नाना मामा बुआ मित्र नारी सुवन ॥
करते मतलब से सारे ये प्यार हैं ॥
झूठा नाता है जो मित्र उसको तजो, कृष्ण के नाम को ही 'कृपाख' भजो ॥
यही तारें तुम्हें भव से पार है ॥

तनिक चुप रहो।

सद्गुरु से आत्म ज्ञान प्राप्त करके सत् वस्तु को नहीं पहिचाना केवल मुख से वैराग्य भाव का परिचय देते रहे सभा में शास्त्रालाप करके पाण्डित्य का परिचय दिया वृथा तर्क वितर्क करके कण्ठके तालु को सुखाया कभी श्रोताबनकर समझने में कभी वेत्ता बन कर समझाने में समय व्यतीत किया इन्हीं निष्प्रयोजन बातों में वृथा मस्तक घुमाते रहे अतएव अबतो तनिक चुपरहो कितने देशों में पर्य्यटन करके कितने तीर्थों में अवगाहन करके और कितने ही देवमन्दिरों में मस्तक नवा कर भी मन की मलिनता नहीं गई इन्द्रियों की आशा नहीं मिटी अब भी तो तनिक चुप रहो। कितने ही लोगों का साथ किया कितने ही देशों की रीति नीति देखी कितने ही तरह के वस्त्र आभूषण पहरे कितने ही सम्प्रदायों में जाकर मिले कितने ही सभाओं के सभ्य बने पर इस से भी क्या हुआ तुम जो थे वही बनें रहे इसी से कहता हूं कि अब तनिक चुप रहो। तुम ने सुखी होने के लिये कितनी चेष्टा की समय २ पर कठिन से कठिन कार्य कर डाले परन्तु सुखी न हुए दिनों दिन आशा बढ़ती ही गई इस लिये यह कहता हूं कि अब भी तो तनिक चुपरहो कभी बन्धु विछोह से हृदय मूर्छित हुवा कभी आत्मीयजन के वियोग से पीड़ित रहे कभी शोक और विलाप से आँसू बहाते रहे परन्तु जिस प्रकार से दुःख का नाश हो इसी का उपाय नहीं किया इसी लिये कहता हूं कि अब तो तनिक चुप रहो। धर्मोपार्जन के लिये बहुत उद्यम किया मान मर्यादा के बढ़ानेके लिए अनेक यत्न करते रहे साँसारिक लोगों के फन्दे में फंस कर और यशोभिलाषी बन कर लोकरंजकता के लिये चातुरी की बातें मत करो यदि तुम्हारे विपरीत भी कोई बात कहे अथवा कटुवचन बोले तो क्रोधित हो कर उत्तर प्रत्युत्तर मत दो उस समय तनिक चुप रहो। घमण्डमें आकर दूसरों को परास्त करने की चेष्टा और अपने मन की हठको छोड़दो और तनिक चुप रहो। यदि अपनी जीवनी की आलोचना करके कुछ समझे हो यदि गुरुजनों से कुछ शिक्षा पाई हो यदि साधु महात्माओं के सत्संग में रहकर कुछ उपदेश पायाहो यदि ध्यानावस्थित सिद्ध महापुरुषों की कृपा से सार पदार्थ का अनुभव किया होतो तनिक चुप रहो। क्या तुमनेयह नहीं देखा है कि सीपि का मुंह स्वाती की बिन्दु पाते ही मोती हो जाता है अतएव चुप रहो।

तर्पण ।

(ले० श्री० सत्य प्रिय)

समर भूमि है ! रात शामयय है ! विश्व अन्ध कार-मय है ! आस पास कोई और नहीं दिखाई देता ! अगर है तो हताहतोंके मूर्छित और गत प्राण शरीर ! अगर सुनाई देता है तो उनका कराहना, लोमड़ियों का रोना, भेड़ियाओं का गुर्राना, और परमकृपण, क्रूर रण देवताओं का विकट हास्य ! दिखाई देता है तो पिशाचों का भीषण ताण्डव, प्रेतों का बीभत्स नृत्य ! रात्रि है, अन्धकार है, कहने को युद्ध बन्द हो गया है पर यहां अब भी शान्ति नहीं है। युद्ध हो रहा है ! किन का ? मृत शवों के लिए भेड़ियाओं का । मृत सैनिकों के शस्त्रास्त्रों और आभूषणों के लिए चोर और डाकुओं का ! हा दैव यह दृश्य कैसा भीषण और बीभत्स है ! वह बिजली कड़की ! अरेर् ! हृदय विदीर्ण हो रहा है ! अरे, ये तो हमारे ही ही सैनिक हैं, चोर और डाकू नहीं !

\+ + + + +

स्वाधीनता के लिए दिन में शत्रु से लड़ने वाले सैनिक रात के अंधेरे में आपस में इन मृत-पुरुषों के शस्त्रास्त्रों और आभूषणों के लिए कैसे लड़ रहे हैं ! इन्हें क्या हो गया ? अरे, ये पागल तो नहीं होगए? कोई दवा तो बताओ !

\+ + + + +

राम राम यह रोग तो अब सेनानायकों तक में फैल गया । वह देखो वे एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं । वह उसने मारा । वह उसने दबाया । यह उठा; वह गिरा । अरे, आज मेरी फ़ौज में क्या हो गया ?

\+ + + + +

"ये मंगल-वाद्य कहां बज रहे हैं ?"

"शत्रु सेना में ।"

उस के सेना निवेश में आज इतना उत्सव क्यों हो रहा है ? इतनी दीप- मालायें क्यों लगाई जा रही हैं ?"

"वह आज विजयोत्सव मना रहा है।,,

\+ + + + +

"भाई वह क्या कहता था ?"

कहता था-"क्या हम इस झगड़े को मिटा दें ?,,

फिर उसे क्या उत्तर दिया ?

किसी ने कहा दिया "मिटादीजिए ।,,

"शिव शिव,,

\+ + + + +

"ओफ़ ! यह तो और भी बढ़ गया ।

"अब क्या बात ?,,

शत्रु कहता है "तुम लोगों में जो सब से योग्य होगा और जिसे लोग कह देंगे कि

यह भला आदमी है, बस उसी को हम प्रधान बना देंगे। बताओ कौन योग्य है ?,,

फिर कौन चुना गया ?

कोई नहीं।

क्यों ?

सब आपस में लड़ने लग गये। यह कहता है मैं सब से योग्य हूं मुझे चुनो, यह कहता है मुझे चुनो मैं सब से योग्य हूं। यह उसे अक्खड़ कहता है, वह इसे धोखेबाज़।

तू तू-मैं मैं—फिर घमसान युद्ध, हा देव।

\+ + + + +

शत्रु से युद्ध करना बुरी बात नहीं है। उस का तो मैं स्वागत करता हूं और इसीलिए हम इस रणस्थली में एकत्र हुए हैं। पर यह आपसी युद्ध, यह भाई भाई मारकाट–ओफ़! यह तो कलेजा चीर देती है। अब तो यह रोग समस्त सेना में फैल गया है। इस से विजय मिलना असम्भव है। जाओ बटोर लो अपने शस्त्रास्त्र। चलो नवीन सेना लावें।

\+ + + + +

प्रातः काल का रम्य सुहावना समय है सूर्य की सुनहली किरणें वृक्षों के शिखरों और पहाड़ियों को अपूर्व तेज से नहला रही हैं। संसार में नवीन-चैतन्य का प्रवाह बह रहा हैं। तालाब नदियां, निर्झर और पक्षीगण नवीन युग के आरम्भ का गान गा रहे हैं। जीवन की मृदुल लहरें हमें थपकियां दे दे उठा रही हैं। प्रत्येक क्षण कोई शुभ संदेश सुना रहा है। सृष्टि अपनी संपत्ति को लिये हुए खड़ी है और हमें कर्म-क्षेत्र में उतरने के लिए निमन्त्रण दे रही। अन्धकार और अज्ञान का युग बीत गया। प्रकाश और ज्ञान का उदय हुआ है। गात्रों में नवीन शक्ति का संचार हो रहा है। हृदय में पवित्र भावों का सागर लहरा रहा है।

\+ + + + +

आओ! वीरो, माता के सपूतो, स्वाधीनता के भक्तो, स्वराज्य के सच्चे सैनिको, आओ। इस नव जीवन के सागर में स्नान कर लो और चलो युद्धस्थल में। आज हमें अपने पितरों का तर्पण करना है।

× × + × ×

आओ, एक श्रेणी में खड़े हो जाओ। हम अपने वीर पितरों का वीरोचित तर्पण करें। वे रोगग्रस्त हो बिस्तर पर नहीं मरे थे जो हम खीर पूड़ी से उनका श्राद्ध करें। माता की बलिवेदी पर, स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए उन्होंने हंसते हंसते अपना बलिदान दिया था। कल ही वे इस रण-भूमि में वीर मृत्यु को प्राप्त कर हमारी आंखों के सामने स्वर्ग को चले गये। उनकी वे वीर रण हुंकार अब भी हमारे कानों में गूंज रही है।

उन के रथ के घोड़ों का पसीना भी अब तक टूटा नहीं। धनुष की वह टंकार अब भी शत्रुओं के हृदयों को दहला रही है।

× ÷ × × ×

समय की गम्भीरता का ख्याल करो। यह रामजन्म का सा खुशी का समय नहीं है अन्नाष्टमी का उत्सव नहीं है। गणेश चतुर्थी का मंगल प्रसंग नहीं है। यह है उन वीर पितरों के बलिदान का और इन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने का गम्भीर क्षण।

+ ÷ - × ×

सम्भव है हम रावण कुलान्तक चाप-पाणी राम का ध्यान न भी कर सकते हों, सम्भव है आदर्श ब्रह्मचारी और स्वामी-कार्य निरत आर्य हनुमान् के स्वरूप का भी हमें ख्याल न होता हो, सम्भव है हम अर्जुन के मोह को भगाने वाले, उसे कर्मयोग का पाठ पढ़ाने वाले योगीश्वर कृष्ण की विश्व-उद्धारिणी गीता का अर्थ भी न समझ पाते हों, पर हम उन पितरों को कैसे भुला सकते हैं जिन्होंने हमें अपनी गोद में खिलाया था, बालविनोद वश जिनकी सफेद सफेद मूछों को पकड़ कर हमने जिन को सताया था, जिन्होंने हमें माता का सच्चा सपूत बनने की दीक्षा दी थी, जिन्होंने हमें देवी स्वाधीनता की अनन्य भक्ति का रहस्य समझाया था, जिन का हमने अब तक विधिवत् अन्त्येष्टि संस्कार भी नहीं किया हाँ, देखिये जिनका खून से लथपथ शरीर अब भी हमारी आँखों के सामने पड़ा हुवा है।

÷ × - - ÷

अज्ञान वश भले ही उनकी जीवितावस्था में उनकी आज्ञाओं का उल्लंघन किया हो, आपस में लड़े-झगड़े हों, किन्तु आज तो उन के बलिदान ने हमारे अन्दर एक अपूर्व भातृ-कता का संचार करदिया है-अलौकिक पितृ भक्ति को जागृत कर दिया है।

÷ × × × ·|·

वीरो आओ, आज हम पुनः इस स्वाधीनता के संग्राम में अपने समस्त भेद-भाव भुला कंधे से कंधा भिड़ा कर उस मानिनीय देवी की प्राप्तिके लिए अपना खून बहा कर उन वीर पितरों का वीरोचित तर्पण करें।

जोड़िए अपने दोनों हाथ और अंजलि में अपना जीवन तथा शिरः-सुमन रख कर, यदि पास होतो श्री-कीर्ति की गंधाक्षता भी रख कर कहिए—

पितरस्तृप्यन्ताम् पितरस्तृप्यन्ताम्,
पितरस्तृप्यन्ताम्।

धर्म-उपदेश ।

(ले० श्री० रूपराम जी वनस्थी)

अरे भारत बता तो अब,
तू भूला किस क़दर मंज़िल ।
तू क्या था बन गया अब क्या,
गिरा क्यों इस क़दर मंज़िल ॥
बने हैं मज़बहे घर घर,
जबह होते हैं लाखों रोज़ ।
जो हैं बाक़ी नहीं ज़िन्दा,
चले जाते हैं हाथों रोज़ ।
हुआ है किस क़दर नाज़ुक,
अजब हालत तेरी भारत।
पड़ा औंधा है मुंह के बल,
सरासर होचुका गारत ।
मरे जाते हैं फाक़ों से,
मज़े फैले हैं क्यों घर घर ।
पसारे हाथ फिरते हैं;
भटकते जाबजा दर दर ।
जिधर जाओ उधर मिलती,
नहीं दारू तेरे दिल की ।
पड़ें फटकार या धक्के,
बनी तसवीर दिलमिल की ॥
लिये मिकराज फिरते हैं,
बग़ल सीने में लेजाजा ।
महोब्बत उड़ गई सारी,
अलग का बजरहा बाजा ।
कहीं दो दिल नहीं मिलते,
जहां देखो जुदाई है ।
ख़ुदी का दौर जारी है,
हुई गायब खुदाई है।
ख़ुदी की कामनाओं ने,
तुझे क्यों कतल कर डाला ।
ख़ुदी को कतल जल्दी कर,
तेरा हो बोल फिर बाला ।
तेरी रग रग व रेशे में,
समाई क्यों कुदरत है ।
कदम को फेर उल्टा दे,
पड़ी अब आ ज़रूरत है ।
तेरा जौहर है तुझ में ही,
भटकता है तू क्यों दरदर ।
नफ़सको मार काबू कर,
मिले तुझ को तिरा फिर घर ।

यह सारी दुनियाँ जिस को हम आंखों से देख सक्ते हैं, कानों से सुन सक्ते हैं और ध्यान के अन्दर ला सक्ते हैं एक ऐसी शक्ति के आधार पर निर्भर है जो दुनिया के रग २ में कूट २ कर भरी है, इस के बिना दुनिया की हस्ती कायम नहीं रह सक्ती है, बच्चे से ले कर बूढ़े तक और गरीब से लेकर अमीर तक क्या इन्सान और क्या हैवान सब इस के शिकंजे में ऐसे जकड़े पड़े है जैसे माला के दाने डोरी में। अगर हम इस अपार शक्ति का नाम मालूम करना चाहें तो अगरचे दुनयवी इस्तलाह में इस को अनगिनत नामों से पुकारा जाता है मगर हकीकत में इसका एक छोटा और प्रिय नाम है जिस को प्रेम या महोब्बत कहते हैं दूसरी भाषा में इस को भक्ति भी बोलते हैं ।

खुला मार्ग है भक्ति का,
वो आये जिस का जी चाहे ।

छुटे जो कर्मबन्धन से,
वो आये जिस का जी चाहे ॥
जकड़ रक्खा है इन्सां को,
खुदी की सख़्त बेड़ी ने,
छुटाये आप को इस से,
कटाये जिस का जी चाहे ॥
जहां में हर तरफ देखो,
बिछा है जाल स्वारथ का,
निकलना चाहे जो इस से ।
तो आये जिसका जी चाहे ॥
मुकद्दर हो रहे हैं दिल,
सरासर सिर की चोटी तक ।
लगा कर इश्क का साबुन ॥
धुलाये जिस का जी चाहे ॥
किये अन्तः करण मैले,
खुदी की कामनाओं ने ।
वह खुद रंगी की रंगत अब,
चढ़ाये जिस का जीचाहे ॥
उठाया सर बहुत ऊंचा,
हमारी खुद नुमाई ने ।
झुका कर सिर को कदमों में,
उठाये जिस का जी चाहे ॥
संभल कर इस तरफ आओ,
खड़ा है मुन्तजिर रहबर ।
चले जो राह भक्ति पर,
सो आये जिस का जी चाहे ॥

अगर तुम भक्ति के असली तत्व को जानना चाहते हो तो चेंटियों के बिलों और शहद की मक्खियों के छत्तों के पास जाकर उन के जीवन को बारीक नजर से देखो अगर तुम को इस की सच्ची खोज है तो वो तुम को कदम २ पर एक इबरत नाक सबक पढ़ायेंगी और बतायेंगी कि इन्सान और हैवान में क्या फरक है मनुष्य को सारी सृष्टि में अशरफ़उल मख़्लूक़ात कहा जाता है उसे देखना चाहिये कि उस में ऐसा कौन जौहर है कि जिस की वजह से उसे वह पदवी मिली ।

आने वाला जात है, जोबन छिन में जात ।
दुनिया है दिन चारकी, काल जगत को खात ।
लक्ष्मी योंही जात है, ज्यूं दरिया की मौज ।
उमर चले ज्यूं बीजली, हाथ न आवे खोज ।
आदम भूला कहां फिरै, धोखा है संसार ।
धोखे में जो आफंसा, कभी न उतरे पार
दुनिया तो मुरदार है, जामिन इसे न भूल ।
दुनिया से नाराज है, हजरत पाक रसूल ।

भक्ति दो प्रकार की होती है एक शारीरिक दूसरे आत्मिक या यह कहो कि एक स्वार्थ सहित दूसरी स्वार्थ रहित पहिली प्रकार की भक्ति अशुद्ध है और दूसरी शुद्ध । साधारण मनुष्य इन दोनों के असली भेद को नहीं जान सक्ते हैं और यही वजह है कि वह बाहर के दिल फरेब और खुशनुमा रास्ते पर अधा-धुन्ध सरपट दौड़ लगाता रहता है और जिस प्रकार गर्मी का मारा और प्यासा हिरन रेत के टीले को पानी समझ कर उसी की तरफ भागता है तो भी उस से अपनी कामना पूरी नहीं कर सक्ता और अपनी सारी दौड़ धूप व मेहनत को हरेक मंजिल पर बरबाद पाता है । इसी तरह मनुष्य भी अपने सिर तोड़ परिश्रम को बिलकुल फिजूल और अकारथ कर लेता है ।

दुनियाँ के पदार्थ जिन के पीछे मनुष्य मारा २ फिरता है, ऐसे हलवे की भान्ति हैं जो खाने में स्वादिष्ट, और देखने में मनोहर मालूम होता है परन्तु उस में एक ऐसा हला हल जहर मिला हुआ है जो धीरे २ उस की अन्तड़ियों को सर्वस्व चकना चूर कर देता है और उसकी मजेदारी और सुन्दरता पर पानी फेर देता है ।

मनुष्य चाहे वह कितने ही परिवार का स्वामी बनजाय रईस होजाय अनन्त खजानों का मालिक हो, कितना ही बड़ा प्रतिष्ठित हो यहां तक कि सारी पृथ्वी का सम्राट होजाय तो क्या उन से वह शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर सक्ता है ? कदाचित नहीं । जब तक वह आत्मिक भक्ति का सच्चा आशिक न हो जाय सारे पदार्थ रखता हुआ भी अपने हृदय में एक खटकता हुआ काँटा मालूम करता ही रहता है ।

बशर बोता नहीं हरगिज,
　　नजाने जब खुदाई एक ।
खुली जब चश्मे रूहानी,
　　गदाई बादशाही एक ॥

नाथ कब आओगे ।

(ले० श्री० लक्ष्मी नारायण शर्मा 'कृपाण' भिवानी)

नाथ, अशरण, शरण दीन हितकारी, भव भय भारी ! संकट के समय आपको छोड़ कर कहां जायं इस समय किसे पुकारें, मंझधार नदी में आपको छोड़कर किसका सहारा लें । भगवन् ! आपके गीता के वाक्य " यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् " का जिस समय हमें ध्यान आजाता है, तो चित्त में ढाड़स सा बंध जाता है, आशा का वृक्ष अंकुरित होता है । जब जब यहां दुष्टोंने अत्याचार किये हैं, गऊ ब्राह्मण अथवा धर्मकी हानि हुई है तब २ आप ने अपनी दयाका हाथ आर्य जाति के लिये बढ़ाया है और अनेकों वार इसे डूबते हुये किनारे लगाया है ।

परन्तु क्या नाथ ! इस समय इसकी वह दशा नहीं है ? क्या अभी आपके आने के पर्याप्त लक्षण उपस्थित नहीं हुये ? क्या भारतीय दाने२ के लिये देश विदेश मारे २ फिरते हुये लज्जा और घृणा के पात्र नहीं बन रहे हैं? क्या सद्धर्म और सदाचार का लोपसा नहीं हो गया ? क्या सच्चे पुरुष, साध्वी स्त्रियां, कर्तव्य परायण युवा तथा सत्पथ गामी बालक बालि-

कायें देशभरमें अंगुलियों पर गिने जाने वाली संख्या में नहीं रह गये हैं? भगवन्! यदि ऐसा है, तो अब देर क्या है, इस समय कहां भूले हो?

हाँ ठीक, याद आया, दो वस्तुओंकी कमी है। एकतो हमारा अटल विश्वास और दूसरे आपको बुलाने योग्य उचित साधनोंका संग्रह। हमने कब, एक स्वर से सच्चे हृदय से, सबने मिलकर केवल आपको पुकारा है? क्यों कि ऐसी पुकारको तो आप अनसुनी करही नहीं सकते, और दूसरे यहकि आज कितने गृहस्थों ने नंद, यशोदा, अथवा दशरथ, कौशिल्याकी भाँति आपको प्राप्त करने के उद्योग किये हैं। कितनी महिलाएं कौशिल्यासी पतिव्रता हैं, जिन में राम ऐसे शिशु को मर्यादा पुरुषोत्तम बनाने की सामर्थ्य है? कैकेयीके ऐसी सौत होते हुये जिनमें घर को कलह से बचाने की शक्ति है? जहां स्त्रियोंमें नतो पर्य्याप्त शिक्षा है, न धार्म्मिक ज्ञान है, न व्यवहारिक बुद्धि है, वहां यह कब आशा होसकती है कि वे आपको प्रसन्न कर किसी देशोत्थान करने योग्य महान शक्ति शाली आत्माको अपनी गोदमें स्थान देसकें।

अस्तु हे शक्ति पुंज! हमें शक्ति दीजिये कि हम अपने उत्थानकी चेष्टामें सफल हों।

शाश्वत जीवन।

(ले० प्रो० रामचन्द्र जी ब्रज एम० ए०)

गताङ्क से आगे।

मारे गर्मी के पिंजर ढीला पड़गया था। काम से जी चुराता था। जिनके पास रुपया पैसा था वह छुट्टी लेकर पहाड़ी पर और करांची बंबई समुद्र के किनारे जा बसे थे। इस समय मुझे से भी एक सज्जन ने समुद्र यात्रा के लिये कहा। उनसे मेरा दूरका सम्बन्ध था। वह बड़े धनी थे। उनके एक कन्या थी जो सदा किसी न किसी रोगमें फंसी रहती थी। यदि वह किसी निर्धन की कन्या होती तो लोग कहते कि कैसी "बहाने बाज है" करोड़ पती की कन्या होनेके कारण लोग उसे "बेचारी इन्दुमती कहा करते थे। उस के पिता रायलक्ष्मीदास केवल धनवान् ही न थे। उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी जिसमें उन्होंने ईश्वर वादी धर्म्म के चीथड़े बिखेर दिये थे। बहुत से पंडितों ने इस पुस्तक का बड़ा आदर किया। राय लक्ष्मी दास का सम्मान इसलिये दो प्रकार के पुरुषों में होने लग गया। एकतो उन पुरुषों में जो मगरमच्छ के रूप में रुपये वालोंके आगे पीछे फिरा करते हैं, दूसरा उन दुरात्मन् व्यथित हृदय वाले अवज्ञा शील पंडितों में जो अपने आपको भूलकर यह समझ ते हैं कि ईश्वर को भूलने में भी कोई अधिक पंडिताई है। उनका निमन्त्रण पहुंचते ही मुझे

बड़ा आश्चर्य हुआ, कि ऐसे पुरुष को मेरा क्यों ध्यान आया इस संसार में हर एक के हृदय में कभी २ बड़ा उत्साह होता है और उस समय उस उत्साह का कारण दिखाई नहीं देता परचात् उसके प्रभाव से हमारी अवस्था उलटी सीधी हो जाती है कदाचित् किसी ऐसे ही कारण के वश में आकर पिता पुत्रों को यह इच्छा हुई कि मैं उनके साथ चलूं। फिर भी मैंने पहले तो कहला भेजा कि मैं नहीं चल सकूंगी। इसके उत्तर में राय लक्ष्मीदास आप चलकर आये और अपनी छोटी २ कठोर आंखों से मुझे देखकर कहने लगे तुमतो सदा किसी न किसी धन्दे में लगी रहती हो। इसमें तुम्हें क्या कुछ लाभ दिखाई देता है। तुम्हारा क्या आराम करने को जी नहीं चाहता? "मैंने उत्तर में मुस्कराकर कहा काम करने में मुझे वही लाभ दिखाई देता है जिसके लिये सारा संसार कर्म बद्ध होता है। सच पूछिये मुझे यह धन्धे ही प्यारे लगते हैं,,। यह सुनकर राय लक्ष्मीदास के मुख की रेखा और भी कठोर हो गई और वह बोले, " तुम्हारी अवस्था में मेरी रुचि भी कार व्यापार में लगी रहती थी। मैं यह सोचा करता था कि मैं अपनी भाग्य की मूर्ति आप घड़ लूंगा। मेरा विचार मिथ्या न था परन्तु अब जो कार्य सम्पूर्ण हो गया है तो मुझे खेद होता है कि मैं अपने भाग्य से डरता हूं। यह जो मैंने चतुर मूर्ति बनाई है पत्थर की मूर्ति जैसी है इसके नेत्रों में तेज नहीं इस का रूप भाव रहित है। ,, मैं यह सुनकर कुछ चुप हो गई तो लक्ष्मी दास और झुंझलाये और मेरी ओर तीव्र दृष्टि करके कहने लगे, क्या तुमने सुना नहीं अगर सुनती हो तो समझती न होगी? ,,इसका मैंने बड़े गम्भीर भाव से उत्तर दिया कि " मैं सुनरही हूं और जो कुछ आपने कहा है समझ भी गई हूं। आपका भाग्य वही है जैसा कि स्वयं आपने उसे बनाया है। आप अमीरी,, चाहते थे वह,,आपको मिल गई। अब उससे आपका मन छिद् गया, इसका तो ऐसा ही अन्त हो होना था। राय लक्ष्मी दास यह सुनकर बड़ा कर्कश हास्य हँसे और कहने लगे " यह कौन सी बात हुई आप तो मन घड़े हवाई घोड़ों पर सवार होकर हवाई बातें करने लग गईं। आप ठीक नहीं कहतीं कि इस का अन्त यही होना! यह परिणाम प्रकृति विरुद्ध है। जब मनुष्य के पास धन हो तो उस को आनन्द प्रसन्न रहना चाहिये। उसे जो कुछ वह चाहे मिल सक्ता है। उस में सामर्थ्य है कि वह जगत के व्यापार और व्यापारियों की जड़ हिला दे। उस में शक्ति है कि जब वह चाहे कल्पद्रुम को पकड़कर उस का फल झाड़दे। परन्तु वह फल यदि स्वाद हीन निकले तो फिर कहीं न कहीं दोष अवश्य होना चाहिये मैंने कहा, " यह दोष फल में नहीं है" वह बोले, " हां मैं जानता हूं आपतो यही कहेंगीं कि जो कुछ दोष है मेरा, और भाग्य

काफल दोष हीन है। आपका विचार सत्य होगा"। "इन्दुमति भी यही कहती है कि जो कुछ आप कहती हैं वही ठीक है बेचारी इन्दुमति सदा रोग और दुःख में फंसी रहती है आप अवश्य चलें। आप चलेंगी तो वह भी प्रसन्न हो जायगी।"

मैं बोली "वह तो मेरे स्वभाव को जानती ही नहीं कहीं मेरे जानेसे उनको अधिक क्लेश न हो।"

उन्होंने कहा, "आप सत्य कहती हैं परन्तु इन्दुमति को आप से कुछ स्नेह जैसा हो गया है। बहुत थोड़ी सी वस्तु ऐसी हैं जिनसे उसको आज कल स्नेह हो। उसका मन उन बातों पर चलता ही नहीं जिनको मैं अपने-धन से पूरा कर सकूं। यदि आप उस पर और और मुझ पर कृपा करना चाहती है तो तो चलिये"।

राय लक्ष्मीदास का हठ मुझे अच्छा नहीं लगा। उनका स्वभाव मेरी रुचि के विरुद्ध था उन्होंने अपने धनसे अब तक किसी का भला नहीं किया था और उनकी विद्या शील मति सदा उन उन्नत भावों के जिन तक वह पहुंच भी नहीं सकी थी संहार के पीछे पड़ी रहती थी। उनका रूप भी डरावना जैसा था। उनके पीतवर्णावृत मुख पर लोभ और कपट की रेखा स्पष्ट दिखाई देती थी। उनकी अवस्था ६० वर्ष से ऊपर थी फिर भी उनका शांशु और कृश शरीर अपकार तत्पर वृत्ति को प्रकट कर रहा था। उनका कुटिल मुख स्मित हस्य में भी अवज्ञा शील रहता था। विचार का कहीं उनको संशय जैसा ही हो गया होगा। वह कहने लगे, मुझसे डरो नहीं मैं राक्षस तो नहीं जो तुम्हें खा जाऊंगा। यह मैं जानता हूं मुझ में शीलता और सभ्यता नहीं। इस संसार ने ही मुझे कष्ट देकर मेरे यह भाव छीन लिये हैं इस पर - यहां वह एक क्षण मात्र रुक कर अपने नेत्रोंको हाथसे पोंछकर कहने लगे डाक्टरों ने मुझसे कहा है कि मुझको ऐसा दरुण रोग लग गया है कि जिस की शान्ति हो ही नहीं सक्ती। वह यह कहते हैं कि अब यह दिनों की बात है। अच्छी रक्षा करने से मृत्यु थोड़े काल के लिये टल जाय तो टल जाय, और जो अकस्मात् प्राण निकल गये तौभी असम्भव नहीं। मैं भी यह चाहता हूं कि इस नवीन दुःख को इस समय तो भूल जाऊं मैंने इन्दुमती को भी यह बात बतला दी है। मैं जानता हूं कि इस से उस के दुःख और विषाद और भी अधिक हो जाएंगे। अब आप समझीं कि हम दोनों बाप बेटी कैसे दीन हैं हम आप को अपना ही दिल बहलाने के लिये साथ ले चलना चाहते हैं। ऐसी दशा में हमें आप को बुलाना योग्य तो न था। राय लक्ष्मीदास की इतनी बात सुनते ही मैंने निश्चय कर लिया। मैं जानती थी कि उन्होंने एक नई प्रकार की नौका बनवाई है जिस में अमेरिका से मंगवा कर एक

प्रबल मोटर भी लगाया है । उस के सुख सौन्दर्य की ओर पुरुष उसे देख आये थे प्रशंसा करते कभी थकते ही न थे । मैंने सोचा कि इससे अतिरिक्त मुझे और कौनसा अवसर मिलेगा। दो रोगियों का साथ तो अवश्य था परन्तु सुख के साधान भी तो थोड़े न थे। मैंने बड़ी दया भाव से उन को उत्तर दिया ॥

मुझे आप की बाधा का वृत्तान्त सुन कर बहुत ही शोक और क्लेश हुआ कदाचित् डाक्टरों की इस में भूल हो उनकी चिकित्सा सदा यथार्थ तो नहीं होती। कई पुरुष ऐसे हैं जिन को डाक्टरों ने मार दिया और अब वह अच्छे भले हैं। यदि आपको और इन्दुमती को मेरे संग की इतनी इच्छा है तो मैं आपके साथ अवश्य चलूंगी ॥

यह सुनते ही राय लक्ष्मीदास के कुटिल मुख पर भी थोड़ी सी दयार्द्रता चमक उठी, और वह मेरे सिर पर हाथ रख कर कहने लगे, "अब तेरी मती ठीक हुई। इन्दुमती के समान तू भी मेरी कन्या जैसी है इसलिये मैंने यदि आदरादर्शी शब्द छोड़ दिया है तो क्षमा करना। समुद्र की वायु देख लेना कितना गुण करेगी। हम रोगियों की चिन्ता न करना। मैं तो इस विषय में फिर तुम से बात भी न करूंगा। इन्दुमती अवश्य कभी २ तुम्हें दुःख दिया करेगी। इस का यह बुरा स्वभाव है कि यदि उसके साथ बात करने वाले को कोई दुःख दरद न हो और किसी रोग औषधी की चर्चा न हो तो उस को कोई दूसरा प्रकरण सूझता ही नहीं। फिर भी हम सब तुम्हें सुख पूर्वक रखने का यत्न करेंगे। मेरी नौका में केवल दो और मनुष्य होंगे एक तो मेरे डाक्टर और दूसरे मेरे मुख्य मुनीम। दोनों भले पुरुष हैं और अपना स्थान पहचानते हैं।"

इतना कह कर उन के नेत्रों में फिर स्वाभाविक कठोरता और मुख पर कुटिल भाव आ गये। मुझे पश्चात्ताप हुआ कि मैंने उन का निमंत्रण क्यों स्वीकार कर लिया मैंने अनमनी जैसे हो कर कहा,

"मेरी एक सखी ने मुझसे करांची जाने के लिये कहा हुआ था इस के पिता वहाँ नौकर हैं ।"

शेष फिर।

मृत्यु ।

ज्ञानवान् पुरुष कहते हैं कि जितने शरीर धारी हैं मरना उनका प्रकृति स्वभाव और जीना विकृति विकार है तस्मात् मनुष्यका श्वास क्षण मात्र जितना चलता है उतने ही को महानलाभ समझना चाहिये लड़कों को अन्धेरे में जानेसे डर लगता है मनुष्यको वैसेही मृत्युसे डर लगता है और जिस प्रकार लड़कोंका स्वाभाविक डर कथा कहानी आदि के सुनने से बढ़ता है उसी प्रकार मनुष्योंका डर मृत्यु विषयक वार्त्ता सुन सुनकर बढ़ता है यथार्थ में मृत्यु को ईश्वरने किये हुए अपराधों से मुक्त होने के लिये स्वर्ग में जाने के द्वार रूप बनाया है अतः उसे पवित्र और धर्म समझना चाहिये परन्तु „आया है सो जायगा" इस प्रकार की चिन्तना करके मृत्यु से डरना अविवेकता का लक्षण है तथापि बहुधा मनुष्य मरने के विषय में नाना प्रकार के तर्क बान्धते हैं तपश्चर्या सम्बन्धी प्राचीन पुस्तकों में लोगोंने लिख रक्खा है कि तुम अपनी हाथ की एक उंगलीको जला कर तथा अन्य किसी प्रकार से पीड़ित करके देखो तुम्हें कितनी वेदना होती है और उस वेदना से मृत्यु की वेदनाको जबकि समस्त शरीर का पात और पृथक् कारण होता है कल्पना करो परन्तु इस प्रकार का तर्क समंजस नहीं कहा जासकता क्योंकि मरते समय इतना भी क्लेश नहीं होता जितना शरीर के एक अवयव के कट जाने अथवा पीड़ित होनेसे होता है कारण यह है कि किसी २ मर्म स्थानतक वेदना के पहुंचने के पहिले कभी कभी २ उसका वेग जाता रहता है एक तत्त्ववेत्ताने बहुत ठीक कहा है कि मृत्युकी अपेक्षा मृत्युकाल का उपकरण अधिक भयंकर लगता है मरते हुएका कराहना और प्रेतसंस्कार की विधि इत्यादिको देखकर मनुष्य का भय भीत होजाना कोई आश्चर्य की बात नहीं एक बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि मनुष्यों में ऐसे विकार हैं कि जिन के जागृत होनसे मृत्यु तृण प्राय हो जाता है अतः मनुष्यों में जब इस प्रकार के अनेक विकार जागरित हों तो मृत्युसे इतना कदापिन डरना चाहिये देखिये बदला लेनेके समय मनुष्य मृत्यु को कुछ समझता ही नहीं प्रेम में मत्त होने से मनुष्य मृत्यु का तिरस्कार करता है अकीर्ति से बचने के लिये मृत्यु को मनुष्य मन से चाहता है दुःख में मनुष्य मृत्यु को घर बैठे बुलाता है और भय के मारे भीरु मनुष्य अपने को अपने ही हाथ से मृत्यु के अर्पण करदेता है इतना ही नहीं कभी कभी दूसरों के दुःख को देख कर भी मनुष्य अपने प्राण दे देता है रोम के ओथो नामक राजाने जब अपने हाथ से अपने को मारडाला तब उसके अनेक सच्चे मित्र और अनुयियों ने रात भक्ति और स्नेह को

दिखाने ही के लिये प्राण परित्याग किये यह विचार करके मनुष्य को मृत्यु से डरना नहीं चाहिये। सर्वदा उस अन्तर्यामी भगवान् का ध्यान करते हुए इस मनुष्य शरीर में ही धर्मार्थ काममोक्ष की सिद्धी के लिये यत्न करना चाहिये।

भक्ति कैसे उपजति।

(ले० बा० नेतराम रेवाड़ी)

पहले जब कहीं कोई मनुष्य भगवान् के अलौकिक गुणों को कथा या वार्ता में सुनता है और भक्तों के प्रति जो जो कार्य्य भगवान् ने दया मदद वगैर के किये हैं उन के बारे में सुनता है तो मनुष्य को उस के गुणों के कारण प्रेम हो जाता है और वह बढ़ते ही जाने के कारण उस को इच्छा होती है कि मैं भी भक्ति को गृहण करूं और भक्तों की कथायें सुनते रहने के कारण दृढ़ रूप में होकर भक्त भक्ति गृहण करलेता है॥

मुक्ति, बिना ज्ञान के नहीं होती और ज्ञान बिना सतसंग के नहीं होता और सतसंग बिना हरिकृपा के नहीं मिलता यानि मुक्ति बिना ज्ञान अर्थात् सत् असत वस्तु के जाने बिना नहीं मिल सकती जब सत असत वस्तु का ज्ञान हो जाता है परन्तु निश्चय रूप में तो उसको असत से वैराग्य और सतसे प्रेम हो जाता है बस यही बंधन से छूटने और मुक्ति प्राप्त करने का उपाय है परन्तु ज्ञान, बिना सतसंग के नहीं प्राप्त होता इसके लिये जहाँ पर सच्चे महात्मा व सज्जन पुरुष हों वहां पर सतसंग करें कभी इसके, लिये यह ख्याल हुआ करता है कि सच्चे महात्मा कहां मिलें सो, "तिन ढूंढा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ। मैं बोरी यों ही रही, रही किनारे बैठ"॥ अतः ढूंढने पर सब कुछ मिल सकता है सच्चे महात्माओं में स्वार्थीपना नहीं होता उदार भाव को लिये हुए सारे संसार के शुभचिंतक होते हैं, इसमें अकसर लोग धोका खाजाते हैं कि उनके ऊपरी बातों से स्वार्थी को अस्वार्थी और अस्वार्थी को स्वार्थी समझ बैठते हैं इसके लिये उनके कामों को गहरे देखो मगर सतसंग भी हरि कृपा बिन नहीं मिलता अतः क्या यह कठिन बात है कि और बातों को तो कर ही सकते हैं मगर हरिकृपा कहां से खरीदें और सबकी जड़ हरिकृपा ही रही यह कठिन नहीं है बहुत सहज है तुम्हारी इच्छाका होना कि भक्ति कोगृहण करूं अर्थात् उस तरफको रुचि होना यही वो हरिकृपा है यह तो भक्तिको गृहण करने का इरादा करतेही आजाती है इस के बढ़ाने के लिये केवल उपाय करो वो भी सरल है। वो क्या कि भगवान् से एक चित्त होकर अपने में दीनता धारण करते हुए दोनों हाथों

को जोड़कर चाहे प्रत्यक्ष में चाहे मनमें प्रार्थना करो कि कि हे दीना नाथ ! दया कीजिये और मुझे अपनी भक्ति का दान दीजिये मैं आप की शरण हूं मुझे सिर्फ इसके इलावा और किसी तरह इससे प्रार्थना करना भी नहीं आता न मेरे में सतकर्मों का ही बल है न मुझे आपके भजन का बल है सिर्फ यही दीन हो कर प्रार्थना करता हूं कि अपनी शरण में लो। बस इतनी ही प्रार्थना पर्याप्त है मगर शांत चित्त होकर और उत्साह में रहो कि मुझे अवश्यमेव भक्ति प्राप्त होगी इसमें कोई शक नहीं कोई बाधा नहीं कभी भी निराश या हताश नहीं होना चाहिये परन्तु दृढ विश्वास रखना चाहिये कि मुझे भक्ति प्राप्त होगी। फिर अपने आप मौके मिलेंगे जिससे भक्ति में उन्नति होती चली जायगी और एक दिन ऐसा होगा कि तुम्हारी यह कामना पूरी होगी इस लिए अभी प्रण करो कि मैं भगवद्भक्त बनूं इस भक्ति में ही शक्ति है कि धर्म अर्थ काम मोक्ष उपार्जन कर सकती है इस से भक्ति का अनुसरण करो और आनंद में मग्न रहो।

ईश्वर का साक्षात्कार ।

(ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी)

इस संसार में अनेक लोगों को यह शंका हुआ करती है कि ईश्वर क्या है ! उस का क्या स्वरूप है ? उसको कैसे पहचान सक्ते हैं? श्रुति कहती है कि ईश्वर सर्व व्यापक है जिस प्रकार से फूल में गन्ध है विश्व में वायु है, दूध में घृत है,काष्ठ में अग्नि (वह्नि) है वैसे ही वह ईश्वर परमात्मा चराचर में व्याप्त हो रहा है। यहां यह शंका स्वाभाविक हो जाती है कि फिर वह व्यापक ईश्वर एक स्वरूप में किस प्रकार देखा जा सकता है ? ऋषि, मुनि महात्मा ज्ञानी उस परमात्मा को निराकार निरवयव, अजर, अमर, सर्वव्यापक, सर्वगुण सम्पन्न कहते हैं। कोई उसे साकार तथा अनेक अवतारों का धारण करने वाला कहते हैं जैसा कि गीता में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

" जब जब धर्म की हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है तब तब मैं अवतार धारण करता हूं। वेद तो 'नेति, नेति' 'यह भी नहीं' 'यह भी नहीं' ऐसा कह कर ईश्वर के स्वरूप मात्र को ही निरादर करता है। इस

एकांत स्थान में बैठकर शान्त चित्त से उस परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि 'हे प्रभो हम हम पर कृपा दृष्टि करो' तो जब निराकार, निरवयव, ईश्वर हाथ, पैर, कान, आंख से रहित है तो वह हम पर किस प्रकार से कृपा दृष्टि कर सकते हैं ? इत्यादि शंकायें आजकल संसार में बहुधा मनुष्यों को उठा करती हैं। परन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो यह सारी कल्पनायें वृथा, निर्मूल तथा इस जीव की अधोगति करने वाली हैं। जब हम इस संसार की छोटी से भी छोटी वस्तु को पूरा २ नहीं जान सकते हैं तो वह ईश्वर जिसको वेद 'नेति नेति कहता है कैसे जान सकते हैं । फलोंको हमने अनेकों बार खाया है, सूंघा है, देखा है उसका भी हम को पूरा ज्ञान नहीं हुआ है अपने हाथ पैर, चर्म, नखादि को नित्य प्रति देखते हैं परन्तु उन के भी स्वरूप का हम को पता नहीं लगा। जब ऐसी २ साधारण बातों काभी हमकों यथार्थ ज्ञान नहीं है तो वह परमात्माजो सच्चिदानंद प्रभु जिस के समान कोई नहीं, जिसका न रूप हैं न रंग है, न नाम हैं, जो केवल अद्वितीय है, जो इन चर्म चक्षुओंमे दिखाई नहीं देता, जो शब्दातीत है, रूपातीत है, इन्द्रियातीत है, उस को जानने के लिये जब इस संसार रूपी सागर में गुरु रूपी नौका का ही अवलम्बन नहीं किया तो उस के तत्त्व को हम क्षुद्र प्राणी कैसे समझ सक्ते हैं ? कैसे जान सकते हैं ? कैसे देख सकते हैं यहां हम पाठकों के सामने एक कथा का उल्लेख करते हैं जिससे स्पष्ट हो जायगा।

एक समय एक नगरमें एक विद्वान् गुणज्ञ, शास्त्र वेत्ता, सदाचारी राजाको ईश्वर के रूपके दर्शन की लालसा लगी। उसने मन में विचार किया कि जो पण्डित, ज्ञानी, सन्त महात्मा मुझे पूर्णब्रह्म परमात्माके दर्शन करादे तोमैं यह समस्त राज्यपाट उनके चरणोंमें अर्पणकर सर्वदाउन्हींके पादकमलों की सेवा किया करूंगा। यह विचार करके उस ने सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया। तत्पश्चात, अनेक साधु महात्मा, पण्डित ज्ञानी आने लगे उन से राजा यह ही प्रश्न करता कि- "कि क्याआप ईश्वर को जानते हैं ? क्या वह है ? यदि है तो कैसा है ? यदि आप यह नहीं बता सकते तो मानना पड़ेगा कि वह नहीं है। फिर न पाप है न पुण्य है, न दान है न धर्म, किस का भजन ? किसकी पूजा ? जप तप सब वृथा हैं। राजा का प्रश्न अति गूढ़ था। विश्व में रहते हुए जीव अपना तो स्वरूप जानते ही नहीं फिर ईश्वर का स्वरूप कैसे जानें। वह पण्डित आत्मा परमात्मा को जानने वाले, द्वैताद्वैत के रहस्य से शून्य सत् चित् आनंद, घन ऐसे परमात्मा को सत् असत् से विलक्षण अन्य पदार्थ के समान दृष्टि से अगोचर बतलानेका प्रयत्न करते परन्तु वह भेद रहित ब्रह्म का प्रतिपादन करने में असमर्थ थे। जो ज.

पण्डित उसकी शंका निवारण करनेमें असमर्थ होते थे उन २ को वह राजा कैद करदेता था। इस प्रकारसे उसने बहुतसे ऋषि, मुनि पण्डितों को कारावास में भेज दिया। जिस मनुष्य ने गुरु मुख से आत्मा परमात्माके भेद को न जाना हो, ज्ञानामृत का पान कर के तृप्त नहीं हुआ हो, बाह्य इन्द्रियों को अन्तरात्मा में लीन नहीं किया हो वह मनुष्य चाहे अनेक शास्त्रों का ज्ञाता भी क्यों न हो इस परमात्मा के वास्तविक तत्त्व को नहीं पहचान सकता इस प्रकार से बहुत दिन व्यतीत हो गये। तत्पश्चात् अष्टावक्र योगी एक साधु के वेश में उस राजा के दरबार में पधारे। साधु की उज्ज्वल कान्ति, तपोबल और तेज को देख कर राजा दिङ्मूढ़ हो गया। परन्तु शीघ्र ही उठ कर महात्मा को प्रणाम किया महात्मा ने कहा हे राजन् मैं तुझे परमात्मा का दर्शन कराने आया हूं। राजा ने उत्तर दिया महाराज आप मेरी प्रतिज्ञा को जानते हैं मैं जो मुझे ईश्वर का साक्षात्कार करावे उन के चरणों में अपना समस्त राज पाठ अर्पण कर दूंगा और जो असमर्थ होता है उस को मैं सदा के लिये कारावास में भेज देता हूं। महात्मा ने कहा तेरे राज पाठ की मुझे आवश्यक्ता नहीं तू आज के आठवें दिवस को अपने नगर के सब सेठ, साहूकार, पण्डित जौहरियों की सभा कर और जिन महात्मा पुरुषों को कारागृह में डाल रक्खा है उन को भी उस सभा में बुलाना और आज ही से जो तैंने अपनी मूर्खता से उन को कारागृह में डाल रक्खा है छोड़ दे। यह कह कर योगी अन्तर्धान हो गये। आठवें दिन राजा का दर्बार ऋषि, मुनि पण्डित, जौहरी तथा साधारण मनुष्यों से भर गया। जिस प्रकार से चकोर चंद्रमा की ओर टकटकी लगाये देखता है उसी भांति सब की दृष्टि योगी राज की ओर लगी हुई थी। राजाने महापुरुष से कहा कि हे योगीन्द्र! मुझे परमात्मा का साक्षात्कार करावो। योगीराज ने सभा में बैठे हुये पदाधिकारियों के गलों में से हार लेकर जौहरियों के सन्मुख रक्खे कि इन का मूल्य बताओ। सब जौहरियोंने अपनी २ बुद्धि से यह नीलम एक लाख का है, यह हार एक करोड़ से कमका नहीं होसकता इत्यादि २ बातें बताई। योगीन्द्रने कहा कि तुम इन की परीक्षा करना भलि भांति जानते हो तो सब से एक स्वर ने उत्तर दिया कि हां महाराज हम बराबर जानते हैं। यह सुनकर योगीराज ने विकराल रूप धारण किया और जौहरियों से कहा कि हमको यह परीक्षा करना अभी सिखादो अन्यथा सबको अभी भस्म करता हूं यह सुनकर एक वृद्ध निपुण जौहरी ने उत्तर दिया कि महाराज चाहे आप हमें अभी भस्म करदें परन्तु तत्काल आपको यह परीक्षा सिखाने में असमर्थ हैं हम वंश परम्परा से यह कार्य करते हैं हम भी करते २ श्वेत हो

चले परन्तु पूरी परीक्षा शक्ति अब भी हममें नहीं है, तो जिसने कभी लाल, नीलम देखे ही नहीं वह तुरन्त इस परीक्षाको कैसे सीख सकता। राजा ने कहा महाराज इनके बाप दादा इस कार्य को करते रहे हैं और यह भी बचपनसे इस कामको करते हैं तब कुछ इन्हें इनकी परीक्षा का भेद प्रतीत हुआ है आप तुरन्त के तुरन्त इसे कैसी सीख सकते हैं। योगीन्द्र को इतना चाहिये था पुनः सोम्य दृष्टिधारण कर कहने लगे कि राजन्! यह नाम रूप रंग वाला एक जड़ पत्थर है जिसको देख सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं जब उसकी परीक्षा भी अभी की अभी नहीं बतलाई जासकती तो वह परब्रह्म परमात्मा जो नाम, रूप, रंगसे रहित है जो चर्म चक्षुओंका विषय नहीं जिस को वेद भी 'नेति नेति' ऐसा कहते हैं अरे मूढ! उसका तत्काल साक्षात्कार कराना यह कैसे सम्भव हो सकता है।

इस दृष्टान्त से यह बात समझी जासक्ती है कि जो मनुष्य यह शंका करते हैं कि यदि परमात्मा है तो हमें दिखलाओ वह तत्काल अपनेचर्म चक्षुओं से उस को किस प्रकार देख सकते हैं। ईश्वर नेत्रों का विषय नहीं है वह तो प्रेम का विषय है। जहां प्रेम है वहां भगवान् है। प्रेम के लिये आवश्यक है कि ईश्वर का ज्ञान हो। ज्ञान से अज्ञान के धर्म की निवृत्ति होती है। कर्म का हेतु अध्यास, है अध्यास का कारण अविद्या है अविद्या को दूर करने केलिये तत्त्वमस्यादि' वाक्यों का विशुद्ध अन्तःकरणमें ज्ञान होना चाहिये। वह ज्ञान बिना सद्गुरु की कृपा के अनेक शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लेने पर भी असम्भव है। अतः परमात्मा के साक्षात्कार के लिये यह परमावश्यक है कि वह सद्गुरु की शरण में जावे श्री भगवान् गीता में कहते हैं कि:-

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

उस ज्ञान को तू सद्गुरुओं को साष्टांग प्रणाम से, पुनः पुनः प्रश्न करने से तथा सेवा से प्राप्त कर। वह तत्त्व दर्शी ज्ञानी तुझे उस परमात्मा का उपदेश करेंगे। आगे चल कर भगवान् स्वयं कहते हैं।

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव॥

हे अर्जुन मेरे सिवाय इस संसार में कुछ भी नहीं है। जैसे एक धागे में कई दाने पिरोये रहते हैं उसी प्रकार यह समस्त जगत् मुझ में है और मैं इस सारे जगत् में हूं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति

जो सब में मुझे देखता है और सबको मुझमें देखता है उस से मैं दूर नहीं हूं और वह मुझ से दूर नहीं है।

मुझको देखता है उस से मैं दूर नहीं हूं और वह मुझ से दूर नहीं है।

भजन।

राम नाम है प्यारा सन्तो ॥

और नाम सब नाम मात्र हैं।
राम नाम है सारा सन्तो ॥१॥
भक्तन को जिमि राम नाम प्रिय।
ध्यानिन को ॐ कारा सन्तो ॥२॥
गणिका, गिद्ध, अजामिल, सेवरी।
बाल्मीक हू तारा सन्तो ॥३॥
इनको को कहै केते तरि गये।
जैसे न नभ में तारा सन्तो ॥४॥
हा बेदार बाहर को निकारत।
द्वैत प्रकार बिचारा सन्तो ॥५॥
पट भये बन्द शून्य भये मन्दिर।
चहुँदिशि भये उजियारा सन्तो ॥६॥
और प्रकाश में आनन्द बिलसत।
गुरु चरनन के तारा सन्तो ॥७॥

कहां ?

(लेखक— श्रीयुत 'विक्रम'

प्रेम।

नारी की रूप-प्रशिखा में तन, मन, धन झुलसाने में
या निसर्ग के कौतूहल को देख हृदय हुलसाने में॥
हरि भक्तों की विह्वलता में योगी के रम जाने में।
अखिल जगत को अपनाने में या स्वदेश गुनगाने में॥
कहां मिलेगा प्रेम बता दो, दुनियां के किस खाने में?
कहीं किसी को मधुर गान से अपनापन बिसराने में॥

शान्ति।

अर्द्ध निशा की नीरवता में, या वन की निर्जनता में।
पर्वत की एकान्त गुफा में साधु की निर्धनता में॥
छोड़ी जगत से नाता हरि के चरणों में रति लाने में।
इच्छाओं को मार कर्म के बन्धन से छुट जाने में॥
कहां मिलेगी शान्ति बतादो दुनियां किस कोने में।
यथा समय जो कुछ करना हो उसके विधिवत होने में॥

सौख्य।

क्या निशि वासर हाय हाय कर अतुलित द्रव्य कमाने में
द्रव्य कमा कर विपुल विभव के ठाट बाट फैलाने में॥
इच्छाओं को पाल पल कर उनका सुफल पा जाने में।
या उनका संहार उन्हीं पर मनो विजय पा जाने में॥
कहां मिलेगा सौख्य बता दो दुनियां के किस खाने में
पाने के उद्योग, न पाकर मन को धीर बंधाने में॥

उपासना के भेद उसकी विधि।

उपासना व्यक्त अव्यक्त सगुण और निर्गुण रूप से होती है। परन्तु वास्तव में निर्गुण उपासना ध्यान है उपास्य उपास भेद दूर हो जाने से उपासना जो द्वैत में ही बन सक्ती है नहीं कहसक्ते। सामान्य पुरुष के लिये उपासना का प्रारम्भ स्थूल अर्चना से होना चाहिये क्योंकि क्रमारोहण से ही सिद्धि होती है। मनुष्यों के चित्त प्रायः चंचल होते हैं और बहुतों का बाह्य अर्चना बिना काम नहीं चल सक्ता परन्तु उस अर्चना में सात्विक भाव होना चाहिये राजसी तामसी न हो, न वह लोक यश अथवा कीर्त्तिके लिये हो- लीलानुकरण उत्सवादि भी यदि शुद्ध बुद्धि से किये जावें तो उन का भी फल अवश्य होता है परन्तु वर्त्तमान समय में प्रायः ऐसा देखने में नहीं आता और सच्चे सगुणोपासकभी वैसे दुर्लभ हैं जैसे सच्चे निर्गुणोपासक अथवा योगी। मन्दिरें की कमी नहीं, उन में हजारों रुपया लगा कर नित्य प्रति बड़ी धूम धाम से उत्सव होते हैं, बड़ी २ सामग्री दीख पड़ती है, रासलीला रामलीला सदा होती है राम राम-कृष्ण कृष्ण-शिव-शिव सब पुकारते हैं, परन्तु बहुधा चित्त पर उस का प्रभाव कम दीखता है॥

उपासक को उचित है कि प्रथम अपने इष्ट देव की मूर्त्ति का जैसे शास्त्रों में वर्णन किया है ध्यान करे यदि प्रतिमा पूजन बिना चित्त न ठहरे तो उसी को पूजे। जो मूर्त्तियां मन्दिरों देवालयों में विद्यमान हैं उन्हीं में सात्विकी भाव से पूज्य करने से चित्त की कुछ न कुछ शुद्धि अवश्य होगी। परन्तु उपासक यह कभी न समझें कि पत्थर या काष्ट की मूर्त्ति ही ईश्वर है किन्तु उस में चेतन का आवेश कर के उस का ध्यान करें। जब इस स्थूल मूर्त्ति की षोड़शोपचार से शुद्ध भाव से पूजने से चित्त कुछ स्थिर होने लगे तो फिर उस आलम्बन को त्याग कर भगवत् की मूर्त्ति को अपने सन्मुख विद्यमान कल्पना करे। जो मूर्त्ति कल्पना की जावे वह सात्विक होनी चाहिये-यथा श्रीकृष्ण भगवान् अथवा विष्णु भगवान् की श्यामवर्ण प्रसन्न वदन, कमल नयन-उज्वल ललाट कम्बुग्रीवा, विशाल वक्षस्थल, अष्ट अथवा चतुर्भुज, मुकुट धारण किये हुए, मकराकार कुण्डलों से भूषित, पीताम्बर धारे, शंख चक्र गदा पद्म धारण किये शांतभक्तों पर अनुग्रह करने वाली। राजसी अथवा तामसी मूर्त्ति का ध्यान न करे-क्योंकि जैसी भावना की जावेगी वैसा ही चित्त हो जावेगा और राजसी और तामसी मूर्त्ति का ध्यान करने से चित्त शुद्ध होने के स्थान में और मलिन

होगा-इसी ध्यान के साथ भगवत् के गुणों का भी चिन्तन करें यथा विष्णु भगवान् के ध्यान में यह चिन्तन करे कि वह कैसे जगत् का सृष्टा पालन कर्त्ता, संहार कर्त्ता, अन्तर्यामी करुणामय, भक्तवत्सल, दीनबन्धु क्रोध मोह द्रोह रहित, नित्य शुद्ध रूप हैं। इस ध्यान से चित्त जो दर्पणवत् है काल पाकर उन गुणों को ग्रहण कर लेगा। यदि ध्यान के साथ " ओं नमो नारायणाय " अथवा 'ओंनमो भगवते वासुदेवाय" इस मंत्र का जपभी किया जावेतो चित्त औरभी शीघ्र शुद्ध हो जावेगा भगवत् के गुणों के श्रवण कीर्त्तन भजन का महात्म्य कौन वर्णन कर सक्ता है, उसके प्रभाव से अधम से अधम और पापी से पापी भी शुद्ध हो कर परम पद को प्राप्त हुए। जो फल बड़े २ यज्ञों से-दानों से-तीर्थ यात्राओं से, व्रतों से भी नहीं मिलता वह भगवद्भजन से प्राप्त होता है

सा जिह्वा या हरिं स्तौति।
तच्चित्तं यत्तदर्पणम्।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ।
यौ तत्पूजा करौ करौ ॥१॥

(गरुण पुराण)

जिह्वा वही है जो हरि भगवान् की स्तुति करे, चित्त वही है जो उन के अर्पण हो और केवल वही हाथ सराहने योग्य है जो उन की पूजा में तत्पर हों"-जिन भगवान् के स्वप्नमें भी नाम लेने से पाप राशी से छूट जाता है-उनके प्रत्यक्ष ध्यान व गुण कीर्त्तन के महात्म्य का तो कथन ही क्या है-सब शास्त्रों को खोज कर और पुनः पुनः विचार कर सब सज्जन महात्माओं का यही अनुभव हो रहा है और केवल इतना सार निकला है कि हरि भगवान् का सदा ध्यान करो। जिस के चित्तमें हरि भगवान् बसे हैं उस के लिये कलियुग भी सतयुग है-जहां हरि भगवान् नहीं वहां सतयुग भी कलियुग है ॥

तज्ज्ञानं यत्र गोविन्दः साकथा यत्र केशवः
तत्कर्म यत्तदर्थाय किमन्यै बहु-भाषितैः

गरुड़ पुराण

वही ज्ञान है जहां गोविंद भगवान् है वही कथा है जहां केशव है वही कर्म है जो उनके निमित्त है और बहुत भाषण से क्या प्रयोजन है"

शिवजी के ध्यान के विषय में शंकर भगवान् कहते हैं।

पशूनां पतिं पाप नाशं परेशं।
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यं ॥
जटा जूट मध्ये स्फुरद् गांग वारिं।
महादेव मेकं स्मरामि स्मरामि।
न भूमिर्नचापो न वह्निर्नचायु।
न चाकाश मास्ते न तन्द्रा न निद्रा॥
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो।
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रि मूर्तिं तमीडे ॥२॥

पशुओं (प्राणियों) के पति पाप के नाश कर्त्ता-परमेश्वर, व्याघ्र चर्मधारी सब के

प्रार्थनीय जिनकी जटा जूट के मध्य में गंगा जी स्फूरण कर रहीं हैं ऐसा एक महादेव का मैं स्मरण करता हूं ॥१॥

जिनके न भूमि है न जल है न अग्नि है न वायु है न आकाश है न ग्रीष्म है न शीत है न देश है न वेष है न मूर्त्ति है ऐसे त्रिमूर्त्ति भगवान्‌की स्तुति करता हूं यह ध्यान योगियों के योग्य है। जब यह धारणा ऐसी दृढ़ हो जावे कि बोलने अथवा अपनी इच्छा पूर्व्वक और कर्म करते चित्त से उपास्य देव की मूर्त्ति कभी हटे तो इसी धारणा के परिपाकसे ध्यान और ध्यान के परिपक्व होने से समाधि होती है। इस भक्ति भावके बाहिर का एक चिन्ह शरीर की विस्मृति कही जाती है।

भारतीय बालिका की विचित्र शक्ति।

बम्बई प्रान्तमें भावनड़ स्थानके पास समाधि यात्रामें आयी हुई चुवारी जातिकी एक अष्टवर्षीया बालिकाकी अद्भुत आश्चर्यजनक जादूकी करामात को देखकर सारा काठियावाड़ चकित हो गया है।

यह बालिका अपने जादूके जोरसे दुष्ट प्रकृतिवाले पुरुषोंका स्वभाव बदल देती है। इस दैवीशक्तिवाली बालिका के पास प्रति मङ्गलवारको रोगियोंकी भारी भीड़ अपना इलाज करानेके लिये उपस्थित होती है। यह आश्चर्यमयी कन्या आधुनिक वैद्यों या डाक्टरोंकी तरह न तो रोगियोंकी नाड़ीपरीक्षा ही करती है और न थर्मामीटर या स्टेथसकोप की सहायता ही लेने की कोई जरूरत समझती है। रोगी पर केवल एक गम्भीर दृष्टिपात द्वारा ही यह वास्तविक रोग का पता जान जाती है। औषधि के रूप में मरीज परसे कुछ उड़द के दाने उतारती है जिन्हें सब दर्शकों के देखते देखते रोगी से चबवाती है। चबाये हुए दानों को निगलने के पहले ही रोगी बिलकुल चंगा हो जाता है। कभी कभी ये दाने इतने कड़े होते हैं कि चबाये ही नहीं जाते। इसलिये कई बार वह नींबू की दो फांक करके एक फांक रोगी पर से उतार कर उलटी रख देती है। उसी समय रोगी भी रोग मुक्त होता जाता है। जब उलटा रक्खे हुए नींबू की फांक को दबाया जाता है तो इस के प्रत्येक छिद्र में से खून चूने लग जाता है। ऐसी ऐसी विचित्र बातें देख कर लोगों में बड़ा आश्चर्य फैल रहा है।

संसार समाचार ।

जर्मन के बर्लिन नगर में सब से बड़ा संस्कृत पुस्तकालय है, जिसमें ४४ हजार से भी अधिक पुस्तकें हस्तलिखित हैं ।

मंगलका ग्रह पृथ्वीसे बहुत नजदीक आरहा है । उग्रहके बाशिन्दगानके साथ बात करनेका इन्तजाम हो रहा है ।

इंगलैंड में मजूरवर्गकाप्रबल बढ़ रहा है म्युनिसिपल कमेटियोंमें सब जगह उन्होंने कामयाबी पाई है ।

इंगलैंडमें एक नया फैशन चला है—स्त्रियोंने पुरुषोंकी नाई बाल कटवाना आरम्भ कर दिया है ।

वायुयान निर्माण की ओर योरप की दृष्टि इस समय अधिक है । वे लोग एक न एक नवीन आविष्कार उसमें करते हैं । एक आश्चर्यजनक वायुयान तैयार करने का विचार किया गया है कि उसका इञ्जिन ४५० घोड़े की ताकत का हो और उसमें १५० मनुष्य बैठ सकें । इसकी लागत में २२,५०,००० रुपये लगेंगे । दूसरे इनसे भी बढ़ कर निकले हैं । उन्होंने (धातु) का वायुयान बनाना निश्चय किया है, जिसमें १००० मनुष्य बैठ सकेंगे ।

चीन में नख धारण करने की विचित्र प्रथा है । जिस तरह भारती शिखा की रक्षा करते हैं चीनी उसी भांति नख रखाये रहते हैं । वहां के बहुत लोग एक एक बिलिस्त के नख बांस की नलिका में अंगुली डालकर रखते हैं ।

जर्मन के सुप्रसिद्ध तत्ववेत्ता फ्रीड्ज महोदय ने सूर्य और पृथ्वी के संयोग से एक ऐसी बिजली निकाली है, जिससे वन्ध्या वृक्षावली भी फलप्रद वृक्षों से दूने फल देती है ।

जर्मन के धातु-कार्यालय में प्रायः चोरी होजाया करती थी । अतः वहां के किसी आविष्कारकर्त्ता ने एक ऐसा यन्त्र बनाकर दरवाजे पर रख दिया है, जो चोरी करने वालों के समीप में जाकर बड़ी जोर से स्वयं ही घंटा देने लगता है ।

अमेरिका में एक बनावटी मनुष्य का आविष्कार हुआ है जो अपने कन्धे पर बन्दूक रख कर लड़ता है और पेट्रोल खाता है ।

कानाड़ा (अमरीका) की एक गाय ने जो डब्ल्यू० सी० डाईली, क्यूबिक निवासी की है ३०६ दिनों में २१२४१ पौंड २६५ मन २१ सेर दूध और ६०६ पौंड (११ मन

२६ सेर) मक्खन पैदा किया था । यह संसार में अपने किस्म की पहली गाय है ।

सुमात्रा के जंगलों में घूमने वाले कुछ अन्वेषकों ने एक ऐसे जीव का पता लगाया है जो एक हाथ लम्बा और सर्वाङ्ग मनुष्याकृति है ।

पैसिफिक महासागर में एक ऐसा जीव दिखाई पड़ा है, जिस का मुख घोड़े के मुख के समान और सारा शरीर मछली के तुल्य होता है ।

मद्रास के बेनार नगर में एक २२ वर्ष का मनुष्य है । वह सवा नौ सेर वज़न में है, पर लम्बा डेढ़ ही हाथ । आधुनिक लोग इसे संसार का सब से छोटा वावन कहते हैं ।

बरबएडो नामक द्वीप में बहुत ऐसे वृक्ष हैं जिन के पत्तों और फलों से वायु लगने पर मनोहर ध्वनी निकलती है । वहां के मनुष्य उन का प्रायः गान सुनते और उन्हें गायक वृक्ष कहते हैं ।

चीन के दक्षिण में कुछ ऐसे मनुष्य मिले हैं जिन के कुत्ते के समान मुख और देह में भेड़ के समान बाल हैं ।

अमेरिका में सियटल एक स्थान है, उस के पास वाशिंगटन झील के किनारे पर एक स्कूल बना था । किसी कारण से लोगों ने उसे हटा कर एक द्वीप में ले जाने का विचार किया । इंजीनियरों की बुलाहट हुई, और उन से कहा गया कि पाठशाला को ज्यों-का-त्यों एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचा दो । एक 'फर्म' ने ठेका लिया, इंजीनियरों ने उसे मिट्टी से काट कर अलग किया । कई नावों पर लादा और 'पगेट साउंड' नामक नहर की दूसरी ओर (जो सात मील चौड़ी है) उस के नए स्थान पर पहुंचा दिया । स्कूल को इस यात्रा में किसी प्रकार का नुकसान नहीं हुआ ।

पतंगों, कीड़ों और पक्षियों को हवा में उड़ते देख कर ही मनुष्यों के मस्तिष्क में वायु में उड़ने का खयाल पैदा हुआ था इस लिये अगर वायुयान पतिंगे या पक्षी की शकल के बन सकें, तो वे आजकल के वायुयानों से अधिक कार्यक्षम होंगे । इसी बात को ध्यान में रख एक फ्रेंच इंजीनियर ने एक वायुयान बनाया है, जो देखने में एक पतिंगे सा है । इसे चालक के हाथ पांव की शक्ति ही चलाने के लिये काफी है, किसी मशीन आदि की आवश्यकता नहीं है । वज़न में यह वायुयान सौ पौंड है किंतु इस के पंखों की सतह प्रायः ३०० वर्ग फीट स्थान को ढंकती है । पक्षी जैसे अपने

पँखों को फड़फड़ा उड़ते हैं; वैसे ही यह यान भी उड़ाके के हाथ के इशारे पर उड़ता है। इस में ज़मीन पर चलने के लिये बाइसिकल के पहिये भी लगे हुए हैं। साइकिल में पैर मारने के लिये जैसा 'पैडेल, लगा रहता है, वैसा ही 'पैडेल इसमें भी लगा है, जिसके चालक द्वारा चलाये जाने पर यह वायुयान आकाश में उड़ता है।

—∞—

त्रिपुर वध।

(सनत्कुमार संहिता से उद्धृत)

त्रिपुरो नाम दैत्येन्द्र प्रयागे तप आस्थितः।
लक्ष वर्षं तपस्तप्तं त्रैलोक्यं सचरा चरम् ॥१॥

दैत्यों के स्वामी त्रिपुर ने प्रयाग में तप किया था, उसने ने एक लाख वर्ष तप किया और सचराचर तीनों लोकों को दुःख दिया ॥

तत्तपस्तेजसाव्यं दग्धुं तु भवन त्रयम्।
नाना देवांगना देवैः प्रेषिता संमोहितम् ॥२।

उस तपके तेजसे तीनों लोकोंको जलाना आरंभ किया। देवताओंने अनेक देवाङ्गनाओं को उसे वशमें करने केलिये भेजी ॥२॥

न तासां वशगः सोभूद्यत्नं आपि धर्षितः।
न क्रोध मोह लोभानां वशो दैत्योनुजायते ॥३

परन्तु वहउन देवाङ्गनाओंके वशमें नहीं हुआ और बड़े २ कठिन कामों से धमकाये जाने पर भी वह दैत्य क्रोध मोह लोभ इनके वश में नहीं आया ॥३॥

वरं दातुं ययौ ब्रह्मा नारदादि भिरन्वितः।
ब्रह्मोवाच
वरं वरय भद्रन्ते सन्तुष्टोऽहं पितामहः ॥४॥

फिर नारद आदि को साथ लेकर ब्रह्मा जी उसे वर देने के लिये गये। ब्रह्मा बोले मैं तुझसे प्रसन्न हूं तू वर मांग तेरा कल्याण होय ॥४॥

तपसा तु फले सिद्धे कः क्लेशं सहते जनः।
त्रिपुरउवाच
अमरं कुरु मां ब्रह्मन् करोमि ह्यन्यथा तपः ॥५॥

तपसे फल सिद्ध हो जाता है तो कौनसा मनुष्य क्लेश सहता है, त्रिपुर बोला, हे ब्रह्मा जी मुझे अमर करो नहीं तो मैं तप करूंगा ॥५॥

दातुं शक्तुं न चेद् ब्रह्मन् व्यथा गच्छ सत्वरम्
ममापि बालमर्त्तव्य मितरेषान्तु का कथा॥

हे ब्रह्मा जी! जो यह देने को समर्थ नहीं हो तो शीघ्र चले जाओ, ब्रह्मा जी बोले हे बालक मुझकोभी मरना है औरोंकी तो क्या

कथा है ॥६॥

अवश्यं देहिनां मृत्युः संभाव्यं याचयस्व मे।
न मे मृत्यु देवताभ्यो मनुष्येभ्योनिशाचरात् ॥७

प्राणियों की मृत्यु अवश्य होती है इस लिये जो बात हो सके सो मांगले त्रिपुर बोला मेरी मृत्यु देवता मनुष्य राक्षस से न हो ॥७॥

न स्त्रीभ्यो न च रोगेण देहि मे वर मुत्तमम्।
ब्रह्मापि च तथेत्युक्त्वा सत्यं लोकं जगाम सः॥

और न स्त्री से और न रोग से होय ऐसा उत्तम वरदान दो, ब्रह्मा जी ने कहा, "ऐसा ही होगा" यह कहकर वे सत्य लोक को गये ॥८॥

एवं लब्धवरं ज्ञात्वा नाना दैत्या समाययुः।
तान् दैत्यान् आगतान् दृष्ट्वा सो ज्ञापयत दानवान् ॥९

जब उसने ऐसा वर पाया तो उसके पास बहुत से दैत्य आये। उन दैत्यों को आया देखकर उसने दानवों से आज्ञा करी कि ॥९॥

अस्मद्विरोधिनो देवा धस्तव्याः सर्व एव हि।
यानि चान्यानि च रत्नानि देवादीनां समीपतः॥

देवता हमारे शत्रु हैं उन सब को पकड़ लाओ, नहीं तो देवता आदिके पास जो रत्न हैं ॥१०॥

गृहीत्वा तानि सर्वाणि कुर्वन्तूपायनं मम।
इत्याज्ञां तस्य शिरसि कृत्वा ते सर्वदानवाः॥

उन सब को लाकर मेरी भेंट करो उसकी इस आज्ञा को शिरपर धरके सब दानव ॥११

देवाश्च नागांश्च यक्षांश्च धृत्वाग्रे स्थितिर्द्विताः।
प्रणम्य सर्वे देवाश्च त्रिपुरं च व्यजिज्ञपुः ॥१२

देवता, नाग, यक्षों को पकड़कर सामने ले आये सब देवता उस त्रिपुरको नमस्कारकर निवेदन करने लगे कि ॥१२॥

गृह्यतां दैत्यराजेन्द्र यदस्माकं भविष्यति।
वयं कृत्वा तु ते सेवां जीविष्यामो यथा तथा॥

हे दैत्य राजेन्द्र जो हमारे पास हो लेलो हम तुम्हारी सेवा करके जैसे होगा वैसे जीयेंगे॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषा मधिकारच्युताः कृताः
तेषां स्त्रियः समानीय देववेश्याः सहस्रशः ॥१४

उनका यह वचन सुनकर उनको अधिकार से अलग कर दिया, और उनकी स्त्रियों को और हजारों देवाङ्गनाओं को ले आये ॥१४॥

एवं भास्करमुत्सृज्य सर्वे देवास्तदाज्ञया।
चक्रुर्यथोक्तं दैत्यस्य त्रासत्रस्ताः स्वयं एव हि ॥१५॥

इस प्रकार सूर्य नारायण को छोड़कर सब देवता उसकी आज्ञा से जैसा उसने कहा

करने लगे, और सब उस दैत्य के द्वार पर खड़े होगये ॥१५॥

सर्वत्र तिष्ठ नित्यं मद्द्वारे स्थीयतां सदा ।
तेनाज्ञप्त स्तथेत्युक्त्वा तद्द्वारि सन्स्थितं क्षणम् ॥

उसने सूर्य से भी कहा भेजा कि सदा मेरे द्वार पर रहो वे भी "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर उसके द्वार पर क्षणभर खड़े होगये ॥

ददाह भवनं सर्वं स्वकरैः क्षण मात्रतः ।
आदित्यस्य ततस्तेन स्वेच्छयागम्यतामिति ॥१६।

और क्षण मात्र में अपनी किरणों से उसके सब घर को तपा दिया फिर उसने आज्ञा दी कि जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ ॥ १७ ॥

ततो गतो सौ भगवान्भुवनानि विभावयन् ।
सर्वे देवा स्तदाज्ञां च द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः १८

फिर भगवान् सूर्यनारायण भुवनों को प्रकाश करते हुये चले गये । और सब देवता निकाल देने पर भी उसके द्वार पर बैठ उसकी आज्ञा पालन करने लगे ॥ १८ ॥

कदा चित्तस्य गेहेतु नारदः समुपाययौ ।
तेनापि पूजितो भक्त्या पृष्टश्च स्व पराक्रमान्

एक समय उसके घर नारदजी आये । उसने भक्ति से उनका पूजन करके अपने पराक्रमों के विषयमें पूछा ॥ १९ ॥

ईदृशो जय घोषस्तु न केनापि कृतो भुवि ।
अस्मिन् देशे तु दैत्येन्द्र किमिदानीं निगद्यताम् ।

नारद जी बोले ? पृथिवी पर इस देश में तुम्हारासा ऐसा जय का शब्द किसी ने नहीं किया हे दैत्येन्द्र ! अब क्या है सो कहो ॥

सर्वं स्थलेषु मे कीर्तिर्न गता किं नु नारद ।
मया प्रकम्पापिता दैत्याः सर्वेपत्र इतस्ततः ॥

त्रिपुर बोला ॥ हे नारद जी ? क्या सब स्थानों में मेरी कीर्ति नहीं पहुंची मैंने तो सब दैत्यों को इधर उधर भेज दिया है ॥ २१ ॥

यत्र यत्र गतो दैत्यस्तत्र तत्र प्रभुः स हि ।
तव नाम न गृह्णाति वक्ति च स्वपराक्रमम् २२ ॥

नारद जी ने कहा कि जहां २ जो दैत्य गया वह वहां का वहां ही स्वामी बन बैठा वह तुम्हारा नाम भी नहीं लेता अपना पराक्रम कहता है ॥

इति श्रुत्वा मुनिस्तेन सद्य एव विसर्जितः ।
क्रोधस्तस्य महान् जातः किं कर्तव्यं मयाधुना ।

यह सुन कर उसने शीघ्र ही मुनि को विदा कर दिया । और उसको बड़ा क्रोध आया की अब मुझे क्या करना चाहिये ॥

विश्वकर्माणमाहूय वाक्य मेतदुवाच ह ।
शीघ्रं कुरु त्रिधातूनां विश्वकर्मन्पुरत्रयम् ॥

उसने विश्व कर्मा को बुलाकर यह कहा कि हे विश्वकर्मा ! तीन धातुओं के तीन पुर बना ॥

विमान तुल्यं यथेच्छा तत्र तत्र गमिष्यति ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा त्वष्टापि च तथाकरोत् ॥

वह विमान के तुल्य हो जहां और हमारी इच्छा हो वहां वे जा सकें । उसका यह वचन सुनकर विश्वकर्मा ने वही किया ॥२५॥

कृत्वैवं समास्थाय त्रिपुरेषु समाश्रितः ।
नारदस्य तु वाक्येन दैत्या वशीकृतास्तदा ॥

और तीन रूप धरकर तीन पुरों में आश्रित

होगया और नारद जी के वाक्यों से दैत्योंको कैद कर लिया ॥२६॥

शेष फिर।

आज से एक हज़ार वर्ष बाद।

आज से हजार वर्ष आगे सभी मनुष्य गंजे होंगे। पुरुषों और स्त्रियों की पोशाकों में बहुत कम फ़र्क़ होगा। उनके कपड़े कृत्रिम ऊन या रुई के होंगे। लोग दूसरों के ध्यान को आकर्षित करने के लिये कपड़े न पहन कर स्वास्थ्य और सुविधा के लिये कपड़े पहना करेंगे। ये कपड़े ऐसे बने होंगे कि उनमें रेडियो की तरंगों को ग्रहण करने की शक्ति होगी। उस समय के मनुष्य आजकलके मनुष्यों की तरह अपने जीवनका एकतिहाई समय सोकर नहीं बरबाद करेंगे। उस समय के लोगों के लिये निद्रा भूतकाल की एक वस्तु समझी जायगी। सबसे मजे की बात होगी मनुष्यों का भोजन। आजकल की तरह उन्हें भोजन करने की जरूरत नहीं पड़ेगी टेबिल पर सभी खाद्य पदार्थोंके अर्क रक्खे रहेंगे और उनसे लगी हुई नली रहेगी। लोग 'बटन' दबा कर जिस पदार्थ का अर्क चाहेंगे, खा सकेंगे। प्रायः सभी खाद्य पदार्थ कृत्रिम रूप से बनाए जायंगे और वे बहुतायत से सस्ते मिलेंगे।

ऊपर लिखी भविष्य-वाणी करनेवाले प्रो० ए० एम० बो ने अपनी पुस्तक में लिखाहै "मेरीभविष्य वाणियाँ व्यर्थ के स्वप्न ही नहीं हैं, वे उन तथ्यों पर अवलंबित हैं, जिनका आश्रय ग्रहण कर आधुनिक सभ्यता मनुष्योंको भविष्य के पथ पर आगे बढ़ा रही है। तीस वर्ष पहले बेतार के तार का कोई नाम भी नहीं जानता था, और आज लोग मंगल-ग्रह से बातें करने की चेष्टा कर रहे हैं। कल की बात कौन कह सकता है!"

मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने अर्द्ध-चेतन मस्तिष्क की कार्यवाहियों का अध्ययन करके यह बतलाया है कि निद्रा व्यर्थ है। मधु-मक्खियां और चींटियाँ कभी नहीं सोतीं; तब मनुष्य क्यों सोवें? निद्रा का काम मनुष्य-शरीर के नष्ट हुए कोषों और मस्तिष्क के गांग्लिया नामक मस्तिष्क-संबंधी एक स्नायु में पुनः नई शक्ति का संचार करना है। मनुष्य-शरीर को जो जीवनी-शक्ति चलाती है, वह एक प्रकार की विद्युत् है। यदि कोई ऐसा साधन निकाला जाय, जिसकी सहायता से यह जीवनी-शक्ति शरीर में प्रविष्ट कराई जा सके, तो सोने की आवश्यकता न होगी। प्रो० लोका विश्वास है कि भविष्य में हमारे कपड़े अंशतः धातव-पदार्थों के बने होंगे जो रेडियो की तरंगों को

ग्रहण कर सकेंगे । जब-जब आदमी एक जामा करेंगे । तब २ वह इसी कपड़े द्वारा विद्युत् ग्रहण कर पुनः ताजे हो जाया करेंगे । आजकल की स्त्रियां जिस प्रकार अपने चेहरे पर बालों का जमना कुरूपता समझती हैं, उसी प्रकार हज़ार वर्ष आगे की स्त्रियाँ अपने सिर के बालों को कुरूपता का कारण समझेंगी । सभी मनुष्य गंजे होंगे । इस भविष्यवाणी का कारण यह है कि आज भी हमारे बाल पहले से पतले और कम हो गए है । गंजे मनुष्यों कि संख्या तरक्की पर है । आज भी हम अपने पूर्वपुरुष बंदरों से अपने शरीर की तुलना कर देख सकते हैं कि हज़ार वर्ष बाद हमारी क्या अवस्था होगी ? स्त्रियों के विषय में भी ये ही बातें कही जा सकती हैं । जो मनुष्य के विषय में लागू हैं ।

भविष्य का आकाश एक विचित्र दृश्य दिखलायेगा । जिधर आंख फेरकर हम देखेंगे मनुष्यों को पक्षियों की भाँति छोटे छोटे वायुयानों पर उड़ते पावेंगे । बड़े और शक्तिशाली वायुयानों का तो कुछ पूछना ही नहीं । वे तो भविष्य में दूर जाने के साधन होंगे ।

घड़ियां दो दिन पूर्व ऋतु को बतलाने में समर्थ होंगी । किंतु मनुष्य जितना आज कल ऋतुपरिवर्तन पर ध्यान देते हैं, उतना उस समय नहीं देंगे; क्योंकि उस समय विज्ञान इतना उन्नत हो जायगा कि किसी प्रकार के ऋतु-परिवर्तन से लोगों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा । लोग सूर्य की गरमी को पकड़ रखने का भी तरीका जान जायंगे और उसे जाड़े के दिनों में काम में लावेंगे उसे उत्तरीय ध्रुव को भेज कर वहीं रहने और खेती बारी करने-योग्य बनावेंगे विद्युत-किरणें बादल को मरुभूमि की ओर झुका देंगी, और वहाँ पानी बरसा कर नए अन्न पैदा करने में सहायता देंगी । वैज्ञानिक लोग अन्न पैदा करने के भी नए तरीके ढूंढ निकालेंगे । बे-पौदों को खाद आदि दे कर जल्दी जल्दी बढ़ने के लिये बाध्य करेंगे । आजकल ही कई ऐसे तरीक़े निकाले गए हैं, जिनसे खेतों में पहलेसे ३० से ६० प्रति सैकड़ा अधिक पैदावार होने लगी है ।

कलेवे के समय लोगों को अखबार पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहेगी । शायद दैनिक अखबारों की जीविका ही मारी जाय, तो आश्चर्य नहीं; क्योंकि एक बटन के दबाते ही लोग चाहे जहाँ का समाचार ही नहीं सुन सकेंगे, बल्कि वहां की घटनाएं भी अपनी आखों देख सकेंगे । बैठे ही बैठे, बिना किसी कष्ट के, सारी खबरें इस प्रकार जब मिल जाया करेंगी, तब कौन अखबार पढ़ने का कष्ट करेगा ? 'टेलिविज़न' या बेतार की आंख का अविष्कार हो चुका है; अब उसे सुचारु रूप से काम में लाने की देर है ।

(माधुरी)

———

दे दर्शन मेरे प्यारे मेरे नयनों के तारे ॥ टेक ॥
दे दर्शन बिन गयो सांवरो,
तड़फत नयन हमारे ॥१॥
वा शोभा को तरसत हूं मैं,
मोर मुकुट शिर धारे ॥२॥
बन बन व्याकुल फिरत अकेली,
श्याम ही श्याम पुकारे ॥३॥
ज्ञान भक्ति और संग दर्श दो,
तजूं प्राण तेरे द्वारे ॥४॥

राम रखवारा है श्री रामचलावें काम ॥ टेक ॥
गर्भ वास में रक्षा करन हारा, उसी ने दूध कुचन में डारा । एक उसी का लेऊ सहारा,
उसी से चलता काम, विश्वआधारा है ॥ १ ॥
वही राम जिन रावण मारा, सब भक्तन का काज सारा । उसी राम का सकल पसारा,
वही मुक्ति का धाम, बड़ा दातारा है ॥ २ ॥
महादेव विष्णु भगवाना, ऋषि मुनि सुर सन्त सुजाना । राम नाम का करें बखाना,
शास्त्र ऋग्यजु साम, जिसे उच्चारा है ॥ ३ ॥
राम रमा सब के घट माहीं, राम बिना कोई अन्तर नाहीं । राम प्रकाशे सब के माहीं
जपलो उस का नाम, यही जग सारा है ॥ ४ ॥
अनन्त आकाश सूर्य शशि तारे पृथ्वी सागर पर्वत भारे । एक उसी के रहें सहारे,
बोलो सीता राम, वही एक प्यारा है ॥ ५ ॥

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्कि । प्रकाश।

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ फक्किओं को समझाया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इसमे विद्यार्थी लघु पढ़कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकता है। मूल्य केवल ।I)

ज्ञान धर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संगृह है। मूल्य ~)।।

शब्द सदाचार संग्रह।

इस में कबीर सूरदास आदि माहात्माओं की वाणियों का संगृह है। मूल्य ~)।

वेदोपनिषद्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संगृह है। मूल्य ।~)

अष्टोत्तरशत मन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संगृह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य ~)।।

भगवद्गीता का संस्कृत तथा भाषा टीका छप रहा है। मूल्य ।।=)

मैनेजर भक्ति प्रेस

भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा (रेवाड़ी)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।